Ss-7

अंक : 3-4 (संयुक्तांक), वर्ष : 2022-23

ISSN-2454-8286

शोध-मनीषा

(शोध-पत्रों तथा आलेखों का पूर्व-समीक्षित वार्षिक संकलन)

सम्पादन

प्रो. (डॉ.) सुधा कुमारी

विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग

बाबासाहेब भीमराव अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

शोध-मनीषा

(शोध-पत्रों तथा आलेखों का पूर्व-समीक्षित वार्षिक संकलन)

अंक : 3-4 (संयुक्तांक) वर्ष : 2022-2023 ISSN : 2454-8286

संपादन

प्रो. (डॉ.) सुधा कुमारी

अध्यक्ष, विश्वविद्यालय हिंदी-विभाग,
निदेशक, हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार,
बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

विश्वविद्यालय हिंदी-विभाग

बाबासाहेब भीमराव अंबेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

अनुक्रम

संपादकीय	: प्रो. (डॉ.) सुधा कुमारी	07
'लमसेना' : आदिवासी जीवन पर केंद्रित हिंदी की प्रथम आंचलिक नाट्यकृति	: प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार सिंह	09
शिशु साहित्य में रवींद्रनाथ टैगोर का योगदान	: प्रो. (डॉ.) समीरण कुमार पॉल	11
गोपाल सिंह 'नेपाली' : फिल्मी दुनिया का सफर	: प्रो. (डॉ.) सतीश कुमार राय	13
उपेंद्रनाथ 'अश्क' के नाटकों का शिल्प-संयोजन एवं नारी-चेतना	: प्रो. (डॉ.) सुधा कुमारी	19
तुलनात्मक साहित्य अध्ययन : मूल्यगत राष्ट्रीयता की पहचान का स्रोत	: प्रो. (डॉ.) देवशंकर नवीन	25
धूमिल की काव्य-दृष्टि	: प्रो. (डॉ.) त्रिविक्रम नारायण सिंह	33
आदिकवि वाल्मीकि : रामकाव्य के परम तत्त्व की मीमांसा	: प्रो. (डॉ.) कल्याण कुमार झा	36
हिमाचल की समकालीन हिंदी कविता : कुछ रंग कुछ छायाएँ	: प्रो. (डॉ.) चंद्रकांत सिंह	41
कबीर का कवित्व	: डॉ. वीरेंद्र नाथ मिश्र	46
समकालीन हिंदी आलोचना : परंपरा और परिदृश्य	: डॉ. राकेश रंजन	49
बेटा भेल-लोकी लेल, बेटी भेल-फेंकी देल	: डॉ. सुशांत कुमार	59
जैनेंद्र की कहानियों में स्त्री और प्रकृति	: डॉ. उज्ज्वल आलोक	68
मानव-संस्कृति के विकास के संदर्भ में कामायनी का मूल्यांकन	: डॉ. संध्या पांडेय	74
रचना-प्रक्रिया और फैंटेसी (संदर्भ : अँधेरे में)	: डॉ. आलोक कुमार सिंह	83
हिंदी के समकालीन हास्य-व्यंग्यकारों की आत्मकथा : एक अनुशीलन	: डॉ. हेमा कुमारी	89
महाकवि मतिराम : आचार्य और कवि का द्वंद्व	: डॉ. संजय कुमार यादव	92
प्रतिबंधित हिंदी साहित्य में कृषक	: डॉ. मधुलिका बेन पटेल	101
मध्यकालीन दलित संत कवयित्रियाँ : दलित स्त्री-विमर्श की भक्तिधारा	: डॉ. प्रियंका सोनकर	104
'गोदान' और 'छै बीघा जमीन' का तुलनात्मक अध्ययन	: डॉ. कुमारी सीमा	109
प्रेमचंद की दलित कहानियों का आलोचनात्मक अध्ययन	: डॉ. साक्षी शालिनी	113
दिल्ली के न थे कूचे औराक-ए-मुसव्वर थे	: कुमार मंगलम	116
राष्ट्रीय आंदोलन, हिंदी पत्रकारिता और प्रेस ऐक्ट	: डॉ. पुष्पेंद्र कुमार	121
भक्ति काव्य में संगीत	: डॉ. कुमारी गीतांजली	129
उतर आई ग़ज़ल इस दौर में, कोठी के ज़ीने से...	: डॉ. राहुल मिश्र	133
भारतेंदु और हिंदी नवजागरण	: डॉ. कपिलदेव कु. पासवान	137
विष्णु प्रभाकर के 'बंदिनी' नाटक की 'उमा'	: डॉ. रामप्रवेश रजक	140
आदिवासी अस्मिता और आज की कविता	: उपेंद्र प्रसाद	142
भारतीय उपन्यास में स्त्री-अस्मितामूलक विमर्श	: केसरबेन राजपुरोहित	145
तुलसीदास के भरत	: अमन कुमार	149
नई कहानी की नवीनता	: वाङ मेई चन	156
नामवर सिंह का प्रारंभिक लेखन : एक विहंगावलोकन	: समीक्षा सुरभि	160
बलचनमा : एक आंचलिक उपन्यास	: शारदा सिन्हा	165
हिंदी दलित साहित्य : आरंभ एवं स्वरूप	: गौतम कुमार	167
हिंदी पत्रकारिता के आरंभिक चरण : काल-विभाजन	: मुकेश कुमार	173

ISSN-2454-8286

प्रेमचंद की दलित कहानियों का आलोचनात्मक अध्ययन

डॉ. साक्षी शालिनी
असिस्टेंट प्रोफेसर, विश्वविद्यालय हिंदी-विभाग,
बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

दलित साहित्य भी समाज के विकृत चेहरे को ही स्पष्ट करने का प्रयास है। यह सदियों से शोषित, पीड़ित, उपेक्षित तथा सामाजिक अधिकारों से वंचित लोगों की जीवन गाथा है। भोगे गये यथार्थ की अभिव्यक्ति ही दलित चेतना की अभिव्यक्ति है। दलित चेतना का जन्म मराठी साहित्य से होता है। महाराष्ट्र में ही सर्वप्रथम अनेक समाज-सुधारकों का पदार्पण हुआ जिन्होंने दलित-चेतना को सशक्त स्वर प्रदान किया, इस चेतना के स्वर को मुखरित करने में मार्क्स की भूमिका को भी पूर्णतः नकारा नहीं जा सकता किंतु दलित-चेतना पूर्णतः मार्क्सवाद नहीं है। इस संदर्भ में राजमणि शर्मा लिखते हैं–

"दलित-चेतना के दृष्टिकोण का जन्म मराठी समीक्षा में मराठी मार्क्सवादी समीक्षाधारा के पराभव की परिणति है। वस्तुतः दलित समीक्षा दृष्टि की ही परिणति, विकास की निरंतरता भी इस बात का सबूत है, परंतु यह मार्क्सवाद के प्रति मोहभंग की परिणति है। इसमें प्रतिरोध का वह भाव है, जो 'मार्क्सवादियों के लिए लताड़ है।' दयावादी और समाजवादी अपना शत्रु देख सकते हैं। दलितों का शत्रु अदृश्य है। वह पुस्तक में, भाषा में, विचार में और लोगों के दिमाग में विद्यमान है ('उत्तरप्रदेश', मई 1997)। फलस्वरूप दलित साहित्य की संकल्पना का समूचा श्रेय मराठी दलित समीक्षा को जाता है जिसका जन्म बलूत ग्रन्थावली प्रकाशन (कुर्ला, मुम्बई, 24 दिसम्बर, 1978) और उसके हिन्दी अनुवाद 'अछूत' से हुआ। इसमें दया पवार और उसके समाज की कंटीली यात्रा का वर्णन है, और है–मानव की मूलभूत अनुभूति की तलाश।"[1]

कहानियों में दलितों तथा स्त्रियों के चित्रण के प्रणेता प्रेमचंद को ही मानना चाहिए। प्रेमचंद की प्रारंभिक कहानियाँ आदर्शवादी यथार्थ का चित्रण प्रस्तुत करती हैं किंतु जैसे-जैसे प्रेमचंद के लेखन कला का विकास होता गया वैसे-वैसे उनकी कहानियाँ सत्य के अधिक निकट होती गईं। 'पूस की रात', 'ठाकुर का कुआँ', 'वेश्या', 'कफन' आदि अनेक उनकी कहानियाँ समाज के दबे-कुचले, उपेक्षित जन का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती हैं। प्रेमचंद की दलित अभिव्यक्ति को राजीव रंजन गिरि इस प्रकार व्याख्यायित करते हैं–

"प्रेमचंद की कहानियों के दलित पात्र दो तरह के हैं। एक वे जो ब्राह्मणवादी मान्यताओं में पूरी तरह रचे-बसे हैं। दूसरे वे जो इसका प्रतिरोध करते हैं। इनके यहाँ प्रतिरोध कई तरह के हैं। कुछ प्रतिरोध सीधे-सीधे आए हैं, तो कुछ गौण रूप में। 'सद्गति' के दुखी को इन मान्यताओं में विश्वास की वजह से कैसी त्रासद सद्गति मिलती है? सद्गति से इस व्यवस्था की निर्ममता व क्रूरता उजागर होती है। लेकिन दुखी इसमें इतना रचा-बसा है कि समझ नहीं पाता। 'मंदिर की सुखिया मन्दिर में घुसने के लिए चोरी-छिपे प्रतिरोध करती है। धर्म के ठेकेदार सुखिया की पिटाई करते हैं। उसके बेटे की हत्या कर देते हैं। प्रेमचंद की दलित जीवन से जुड़ी कहानियों में गैर-दलितों की अमानवीयता, क्रूरता और दलितों के शोषण के दुश्चक्र की जटिलता के साथ ही दलितों के मन में मुक्ति की छटपटाहट भी दिखती है। प्रेमचंद यह भी कहना चाहते हैं कि मुक्ति के लिए पूरी व्यवस्था बदलनी होगी।"[2]

प्रेमचंद हिंदी कथा साहित्य के सम्राट माने जाते हैं। सर्वप्रथम प्रेमचंद ने ही समाज के दलित वर्ग और स्त्रियों की दीन-हीन दशा का अपनी कहानियों तथा उपन्यासों में न सिर्फ चित्रण किया बल्कि उनमें से अपनी अनेक रचनाओं में दलित वर्ग को अपनी रचनाओं का नायक बनाकर इस सामाजिक व्यवस्था के आमूलचूल परिवर्तन की पुरजोर वकालत की। दलित साहित्य जो आज अपने विकास के दौर से गुजर रहा है उसकी नींव प्रेमचंद की रचनाओं में ही मिलता है। दलित चेतना को व्यक्त करने वाली प्रेमचंद की प्रमुख कहानियाँ इस प्रकार

हैं–'पूस की रात', 'बूढ़ी काकी', 'सद्गति', 'ठाकुर का कुआँ', 'मंदिर', 'दूध का दाम', 'वेश्या', 'सफेद खून', 'घासवाली', 'नशा', 'कफन' आदि।

ठाकुर का कुआँ–दलित चेतना पर आधारित यह कहानी प्रेमचंद की प्रमुख रचना है। इसमें एक दंपति की कहानी है, जिसमें पुरुष प्यासा है और पत्नी से एक गिलास पानी माँगता है। गाँव में पानी का भी बँटवारा है। नीच जाति वालों के कुएँ में कोई जानवर गिरकर मर गया है अतः पानी विषैला हो चुका है, स्त्री ठाकुर के कुएँ से छुपकर पानी लाने जाती है। स्त्री द्वारा छुपकर ठाकुर के कुएँ से पानी लेने जाना दलितों के लुके-छुपे विद्रोह को प्रदर्शित करता है, लेकिन वह पानी ले नहीं पाती है और उसका पति उसी विषैले पानी को नाक बन्द कर पीता है, जो दलितों की दयनीय स्थिति का द्योतक है। दलितों की पीड़ा को कहानी के इस अंश में देख सकते हैं–"उसने रस्सी का फंदा घड़े में डाला। दायें-बायें चौकन्नी दृष्टि से देखा, जैसे कोई सिपाही रात को शत्रु के किले में सूराख कर रहा हो। अगर इस समय वह पकड़ ली गयी, तो फिर उसके लिए माफी या रियायत की रत्ती-भर उम्मीद नहीं। अन्त में देवताओं को याद करके उसने कलेजा मजबूत किया और घड़ा कुँए में डाल दिया।

घड़े ने पानी में गोता लगाया, बहुत ही आहिस्ता। जरा भी आवाज न हुई। गंगी ने दो-चार हाथ जल्दी-जल्दी मारे। घड़ा कुँए के मुँह तक आ पहुँचा। कोई बड़ा शाहजोर पहलवान भी इतनी तेजी से उसे न खींच सकता था।

गंगी झुकी कि घड़े को पकड़कर जगत पर रखे कि एकाएक ठाकुर साहब का दरवाजा खुल गया। शेर का मुँह इससे अधिक भयानक न होगा। गंगी के हाथ से रस्सी छूट गयी। रस्सी के साथ घड़ा धड़ाम से पानी में गिरा और कई क्षण तक पानी में हलकोरे की आवाजें सुनाई देती रहीं।

ठाकुर 'कौन है, कौन है,' पुकारते हुए कुएँ की तरफ आ रहे थे और गंगी जगत से कूदकर भागी जा रही थी।

घर पहुँचकर देखा कि जोखू लोटा मुँह से लगाये वही मैला-गंदा पानी पी रहा है।"[3]

कथासम्राट प्रेमचंद की कहानियों के सर्वेक्षण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इन कहानियों में दलित जीवन का चित्रण किसी न किसी रूप में अवश्य हुआ है। ***'जुरमाना'*** कहानी में मेहतरों और मेहतरानियों के जीवन का चित्रण हुआ है, तो ***'घासवाली'*** कहानी में एक दलित स्त्री की पीड़ा का मार्मिक चित्रण तो हुआ ही है साथ ही यह भी बताया गया है कि रईस घर की बहू-बेटियों के संबंध अपने नौकरों-चाकरों से हुआ करते हैं। प्रेमचंद की 'घासवाली' कहानी में दलित स्त्री जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है, इस यथार्थ को मुलिया इन शब्दों में व्यक्त करती है–"मुलिया के होठों पर अवहेलना की मुसकुराहट झलक पड़ी, बोली–फिर भी अगर मेरा आदमी तुम्हारी औरत से इसी तरह बातें करता, तो तुम्हें कैसा लगता? तुम उसकी गर्दन काटने पर तैयार हो जाते कि नहीं, बोलो! क्या समझते हो कि महावीर चमार है, तो उसकी देह में लहू नहीं है, उसे लज्जा नहीं है, अपनी मर्यादा का विचार नहीं है? मेरा रूप रंग तुम्हें भाता है। क्या घाट के किनारे मुझसे कहीं सुंदर औरतें नहीं घूमा करतीं? मैं उनके तलवों की बराबरी भी नहीं कर सकती। तुम उसमें से किसी से क्यों नहीं दया माँगते। क्या उनके पास दया नहीं है? मगर वहाँ तुम न जाओगे; क्योंकि वहाँ जाते तुम्हारी छाती दहलती है। मुझसे दया माँगते हो, इसलिए न कि मैं चमारिन हूँ, नीच जाति हूँ और नीच जाति की औरत जरा-सी घुड़की-धमकी वा जरा-सी लालच से तुम्हारी मुट्ठी में आ जायेगी। कितना सस्ता सौदा है। ठाकुर हो न, ऐसा सस्ता सौदा क्यों छोड़ने लगे?"[4]

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में दलित जीवन के यथार्थ को मार्मिकता के साथ व्यक्त किया है। यद्यपि यह अभिव्यक्ति स्व-अनुभूति के आधार पर नहीं है किन्तु इन कहानियों को पढ़ने के बाद यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि प्रेमचंद ने दलित जीवन को काफी नजदीक से देखा था और उनकी पीड़ा को आत्मा से महसूस किया था। प्रेमचंद की दलित जीवन से संबद्ध कहानियों का सर्वेक्षण प्रस्तुत करते हुए डॉ. इंद्रमोहन कुमार सिन्हा लिखते हैं–

"'सौभाग्य के कोड़े' के अनाथ नथुआ को एक ईसाई के पंजे से छुड़ाकर राय भोलानाथ अपने मकान में झाड़ू देने का काम सौंपते हैं। घर के जूठन से उसके उदर की पूर्ति होने लगती है। पर एक दिन एक छोटे से अपराध के लिए वे उसे अपने यहाँ से निकाल देते हैं और भंगियों के मुहल्ले में उसे स्थान मिलता है। ***'आगा-पीछा'*** का भगत राम जाति का चमार है। उसके पिता स्कूलों के

इंस्पेक्टर के यहाँ अर्दली हैं। उनकी सिफारिश से वह स्कूल में भर्ती हो जाता है। पहले तो स्कूल के शिक्षक भी उसे नहीं छूते हैं, पर धीरे-धीरे यह दशा तो सुधर जाती है, परंतु विद्यार्थी वर्ग उसे अछूत ही समझते हैं। इन दोनों कहानियों में अछूतों की सामाजिक दशा का उल्लेख है।"[5]

प्रेमचंद की दलित जीवन से संबद्ध कहानियों के बारे में डॉ. रामदरश राय लिखते हैं—"'सद्गति' कहानी में दुखी की लाश की सद्गति का चित्रण परंपरित भारतीय वर्ण-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था पर एक चुभनकारी प्रश्न खड़ा करता है। 'ठाकुर का कुआँ', 'दूध का दाम' तथा 'सद्गति' जैसी कहानियों की तरह प्रेमचंद की अन्य कहानियाँ जैसे- 'कफन', 'पूस की रात', 'मंत्र', 'मन्दिर', 'एक राष्ट्रसेवक' आदि की जमीन इसी दलित संवेदना बोध के साथ तैयार हुई है। इन कहानियों में मनुष्य को मनुष्य न समझने वाले, उन्हें डोम, चमार, पासी और धरिकार आदि समझने वाले मनुष्य समाज के एकाधिकार से प्रेमचंद को काफी संघर्ष करना पड़ा है।"[6]

निष्कर्षतः प्रेमचंद की कहानियों में दलित से ज्यादा दलित समस्या को व्यापकता दी गई है। उनके कुछ कहानियों के पात्र अस्पृश्यता को अपनी नियति मान लेते हैं। लेकिन कुछ इस नियति के प्रति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विद्रोह भी करते हैं। कहानियों के विकास के साथ ही दलितों का विद्रोह उत्तरोत्तर बढ़ता गया है, जो व्यवस्था परिवर्तन का आगाज है।

संदर्भ-सूची :

1. दलित चेतना की कहानियाँ : बदलती परिभाषाएँ, राजमणि शर्मा, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010, पृ.-79-80
2. दलित कहानियाँ : कुछ राग-रंग, राजीव रंजन गिरि, प्रेमचन्द : विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता, सम्पादक : मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, रेखा अवस्थी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ.-508
3. प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियाँ, खण्ड-1, प्रेमचन्द, सुमित्रा प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014, पृ.-85-86
4. घासवाली, प्रेमचन्द की सम्पूर्ण कहानियाँ, खण्ड-1, प्रेमचन्द, सुमित्रा प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014, पृ.-192
5. प्रेमचन्द युगीन भारतीय समाज, डॉ. इन्द्रमोहन कुमार सिन्हा, बिहार हिन्दी ग्रंथ, अकादमी, पटना, मई, 1974, पृ.-138
6. प्रेमचंद का संघर्षशील मानस और उनकी कहानियाँ, डॉ. रामदरश राय, वही, पृ.-138-139